खांचों में बंटी स्त्री

आज की महिला, जो अपनी एक अलग और स्वतंत्र भूमिका तलाश रही है, को विरोध का सामना भी करना पड़ सकता है। समाज में खुल कर अपनी भूमिका निभाने को तत्पर आज की महिला की तुलना निचले तबकों की महिलाओं, जिनका दैहिक शोषण किया जाता था, से किए जाने का मानस भी देखने को मिल रहा है

■ प्रो. सुभद्रा चानना
डिपार्टमेंट ऑफ एंथ्रोपॉलोजी
दिल्ली यूनिवर्सिटी

व्यापक सांस्कृतिक विविधता का देश है भारत। इसकी सांस्कृतिक विविधता अपने भीतर अनेक समाजों, अर्थव्यवस्थाओं, आजीविका अर्जन के विभिन्न तौर-तरीकों, भौगोलिक क्षेत्रों, रस्मो-रिवाज और मत-विश्वासों को सहेजे हुए है। ऐसी विविधता के मद्देनजर भारतीय महिलाओं का कोई एक विशेष प्रतिनिधिक स्वरूप बता पाना न केवल असंभव है, बल्कि अविश्वसनीय भी होगा। एक वर्ग के रूप में महिलाएं श्रेणी, जाति, धर्म, स्थानीय संस्कृति और आस्था जैसे तमाम अन्य विविध घटकों के दरपेश हैं। भारतीय महिलाओं द्वारा मुखरित विविधता करीब-करीब उसी विविधता का प्रतिरूप है, जिसे भारत ने उपरोक्त तमाम घटकों के जरिए मुखरित किया है। भारत एक पितृसत्तात्मक समाज है। इस समाज का निर्माण करने वाले विभिन्न समूहों और संस्कृतियों में पूरी ठसक के साथ पितृसत्तात्मकता मौजूद है। लेकिन एक बड़े और आभासी खाके के जरिए कुछ सतही वर्गीकरण तो किया ही जा सकता है। जैसे ऊंची जाति और नीची जाति की महिलाओं, दफ्तर में काम करने वाली और मजदूरी करने वाली महिलाओं, खेतिहर समाजों और खेत मजदूरी करने वाली महिलाओं, विवाहित और अविवाहित या विधवा महिलाओं, पुत्रों की माता और वे जिनके संतान नहीं, विभिन्न धर्मों की महिलाओं वगैरह के आधार पर ऐसा वर्गीकरण संभव है।

जिन मानकों को अंतर डालने वाले संकेतकों के तौर पर लिया जा सकता है, वे बुनियादी तौर पर किसी परिवार का व्यवसाय, विवाह संबंधी कायदे, संपत्ति और उत्तराधिकार संबंधी नियम, तलाक/पुनर्विवाह के कायदे, आजीविका-स्तर, संबद्ध समुदाय की भौगोलिक अवस्थिति, धार्मिक मान्यताएं व मूल्य और तमाम अन्य तौर-तरीके हैं। हिंदू समाज में जातिगत रिवाजों ने महिलाओं को पूरी तरह से पितृसत्तात्मक नियम-कायदों में जकड़े रखा है, लेकिन महिलाओं की जातिगत स्थिति के मद्देनजर इनमें अंतर भी होता है। पारंपरिक रूप से और मनुवाद के मुताबिक, ऊंची जाति के पुरुषों की नीचे वर्ण की महिलाओं तक पहुंच थी। ब्राह्मण जाति के पुरुषों की पहुंच सर्वाधिक थी, जबकि शूद्र और अछूतों की सबसे कम। नीची जातियों की महिला का ऊंची जाति के पुरुषों द्वारा यौन शोषण किया जाना कोई अपराध नहीं समझा जाता था। लेकिन अगर नीची जाति का पुरुष ऊंची जाति की महिला की ओर आंख भी उठाता तो पीट-पीट कर मार डाला जाता था। महिलाओं पर इसका प्रभाव यह हुआ कि ऊंची जाति की महिला को घर की दहलीज के भीतर ही रखा जाता। ऊंची जाति के उसके पति द्वारा संपत्ति की भांति उसकी हिफाजत की जाती। नीची जाति की महिला, जो गली-कूचों और खेतों में प्राय घरेलू नौकरानी, कृषि मजदूर के रूप में काम कर रही होती थी, या विभिन्न कामकाज जैसे कपड़ों की धुलाई या बर्तन बनाने, बुनाई जैसे हुनरमंद कार्यों में पति का हाथ बंटा रही होती थी, शोषण के लिए मजबूर थी।

ऊंची जाति की महिलाएं घर में बंद थीं। उनके कहीं आने-जाने पर तमाम बंदिशें होती थीं। सार्वजनिक स्थलों पर मौजूदगी के अवसर बेहद कम थे। नीची जाति की महिलाएं स्वतंत्र थीं। अपने घर की आय में योगदान करने की गरज से कमाती थीं। हालांकि उनका समाज में हर कहीं शोषण होता था, लेकिन उन्हें अपने जीवन पर कहीं ज्यादा अख्तियार था। जहां ऊंची जाति की महिलाओं को पति के प्रति वफादार रहने का सख्त रिवाज था, और विधवा होने की स्थिति में उन्हें घनघोर दुख का सामना करना होता था, वहीं नीची जाति की महिलाओं के लिए इस प्रकार की बंदिश न के बराबर थी। वे तलाक ले सकती थीं। फिर से विवाह कर सकती थीं। उनकी समस्याएं तो गरीबी और अपने शरीर तथा अपने पति और बच्चों के शोषण से जुड़ी थीं। इन हालात में वे बंधुवा मजदूर बनने को विवश हो जाती थीं। या फिर उन्हें बेहद कम मजदूरी पर सफाई कार्य जैसे मुश्किल और असुरक्षित कार्य करने पड़ते थे।

जाति की अवधारणा कमोबेश हर जगह

ऊंची जाति की महिला और उसके पति के बीच रुतबे का अंतर भी कहीं ज्यादा होता था। अगर पति के पास दुनियावी धन-दौलत, धार्मिक अधिकार होते तथा अन्य प्रकार की कोई हैसियत होती तो उसकी पति महिला होने के नाते उसमें हिस्सा नहीं बंटा सकती थी। वह पति की भांति रस्मों को पूरा नहीं कर सकती थी। भूमि का स्वामित्व नहीं पा सकती थी। सार्वजनिक स्थानों पर नहीं जा सकती थी। दूसरी तरफ, नीची जाति की महिला आम तौर पर अपने अभावों भरे हालात को अपने पति के साथ साझा करती थी। घरेलू मामलों में पति के साथ उसकी पूरी भागीदारी रहती थी। वह घर के लिए रोटी कमाने वाली भूमिका में होती थी। हालांकि जाति हिंदू अवधारणा है, लेकिन भारतीय समाज में इस प्रकार के तौर-तरीके कमोबेश मुस्लिमों, ईसाइयों तथा अन्य धर्मों में भी देखने को मिलते थे। हिंदुओं की भांति ही पितृसत्तात्मक मूल्य और तौर-तरीके गैर-हिंदुओं में भी प्रचलित हैं।

संपत्ति पर उत्तराधिकार संबंधी नियम और तौर-तरीके भी महिलाओं के जीवन की दिशा-दशा तय करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भूमि पर अधिकार रखने वाले समूहों में दहेज देने और लेने का चलन था। लेकिन उत्तर भारत में पुत्री वाले का दरजा पुत्र वाले से हमेशा ही कमतर आंका गया। इस सामाजिक सोच के कारण लड़कियों के घर में जन्म को अवांछित मान लिया गया। इसके अलावा, ऊंची जातियों की महिलाओं को घर से बाहर कमाना भी नहीं होता था। सो, लड़की पैदा होना सम्मान की बात नहीं समझा जाता था। बालिका को घर में ऐसे व्यक्ति के तौर पर देखा जाता था, जैसे वह परिवार का सदस्य ही न हो। न तो वह पिता के लिए परिवार की सदस्य की तरह थी, और न ही पति के लिए। अभिभावक भी बुढ़ापे के सहारे के रूप में अपने पुत्र पर निर्भर रहना चाहते थे। परिवार का नाम उसे सौंपना चाहते थे। इन तमाम कारकों के चलते बालिका भ्रूण हत्या के हालात पैदा हो गए। आज भी समाज में यह सोच विद्यमान है। देश के उत्तर-पश्चिम भूभाग में लिंगानुपात में गिरावट इसी सोच का नतीजा है।

लेकिन विवाह और उत्तराधिकार के ऐसे नियम-कायदे पूरे भारत में एक समान नहीं हैं। जनजातीय क्षेत्रों में संपत्ति पर सामुदायिक पहुंच इस कदर है कि पूरी तस्वीर ही बदली दिखलाई पड़ती है। इन समाजों में महिलाएं खेतीबाड़ी में सक्रियता से जुड़ती हैं। पशुपालन में सक्रिय रहती हैं। घर और समाज की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे किसी पहरे में नहीं रहतीं। पितृसत्तात्मक नियम-कायदों की जद से प्रायः बाहर हैं। लेकिन कभी-कभार उन्हें समाज की सामूहिक कुंठा का निशाना जरूर बनना पड़ जाता है। मध्य प्रदेश और असम जैसे राज्यों में कहीं-कहीं ग्रामीण आबादियों और जनजातीय इलाकों में महिलाओं को काला जादू करने वाली या डायन करार देकर मार डालने के मामले भी जब-तब सामने आते रहते हैं। इस कारण से स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं और माहौल में महिलाओं की भागीदारी असरंदोज हो रही है। लेकिन पश्चिम समाज के विपरीत भारतीय महिलाएं हमेशा से ही मजबूत और सांस्कृतिक रूप से संगठित रही हैं।

इलस्ट्रेशन : जे.पी. त्रिपाठी

अलबत्ता, आज के दौर की महिला, जो अपनी एक अलग और स्वतंत्र भूमिका तलाश रही है, को विरोध का सामना भी करना पड़ सकता है। समाज में खुल कर अपनी भूमिका निभाने को तत्पर आज की महिला की तुलना निचले तबकों की महिलाओं, जिनका दैहिक शोषण किया जाता था, से किए जाने का मानस भी देखने को मिल रहा है। सार्वजनिक जीवन में आज नारी का दैहिक शोषण तमाम किस्सों से भरा पड़ा दिखता है। नये मूल्यों को तेजी से बदलते समाज में तालमेल बिठाते हुए अपनी जगह अभी बनानी है। बेशक, पति के माध्यम से राजनीति में भागीदारी निभा रही है। या अपने पिता के कुल के नाम पर यह भूमिका अच्छे से निभा रही हैं। भारतीय देवी-देवताओं के समान ही नारी को शक्ति के रूप में पूजा गया है। वे अपने तईं अकेले दम स्वयं को साबित करने में सक्षम हैं। भारतीय महिला कोई ऐसा किरदार नहीं है कि जिसे समझा ही न सके। उपमहाद्वीप की बहुसांस्कृतिक स्थिति के मद्देनजर उसे अच्छे से समझा जा सकता है। ■

किशोरवय संबंधी आंकड़े एनएफएचएस 3, डीएलएचएस 3 तथा एसआरएस समेत राष्ट्रीय सर्वेक्षणों से प्राप्त किए गए हैं, जिनसे पता चलता है कि 15-19 वर्ष आयु वर्ग की केवल 14 प्रतिशत लड़कियों को संपूर्ण एएनसी प्राप्त होता है। इस कारण किशोरवय की विवाहित लड़कियों को प्रसव के दौरान जटिलताओं का सामना करना पड़ता है

चिकने नहीं विरवान

■ रविंद्र सिंह
एसो. प्रोफेसर एवं हेड, डिपार्टमेंट ऑफ ह्यूमन बिहेवियर एंड एलायड साइंसेज हॉस्पिटल फैकल्टी ऑफ मेडिकल साइंसेज, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली

भारत में बच्चों (0-14 वर्ष की आयु के बीच) की संख्या तीस करोड़ से अधिक है। अपने देश के इन बच्चों में दो-तिहाई घोर गरीबी और उपेक्षा का जीवन जीने को अभिशप्त हैं। हमने, भारत देश के रूप में, वर्ल्ड डिक्लेरेशन ऑफ सर्वाइवल, प्रोटेक्शन एंड डवलपमेंट ऑफ चिल्ड्रन तथा इसे क्रियान्वित करने संबंधी कार्रवाई योजना पर हस्ताक्षर किए हैं। इस आलेख में अपने देश के बच्चों के हालात और सरकारी नीतियों, कार्यक्रमों और योजनाओं के जरिए इस संबंध में किए गए और किए जा रहे प्रयासों पर प्रकाश डाला गया है। इस बात की पड़ताल की गई है कि योजनाओं, कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन से विभिन्न बाल समूहों के हालात में किस कदर मौलिक बदलाव आ पाए हैं। देश की जनसंख्या का 22.8 फीसद हिस्सा किशोरवय (10 से 19 वर्ष के बालक) बच्चे हैं। भारत की तेजी से बढ़ती जनसंख्या का पांचवां हिस्सा 19 वर्ष से कम आयु की लड़कियों का है। सरकारी नीतियां प्रमुखतः 14-18 आयु के बच्चों पर केंद्रित है। इस आयु के बच्चों की संख्या करीब 10 करोड़ 20 लाख है।

बच्चों के लिए राष्ट्रीय कार्ययोजना में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य को प्राथमिकता दी गई है। सभी के लिए स्वास्थ्य के लक्ष्यों के साथ ही मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य संबंधी लक्ष्यों का तालमेल बिठाया गया है। योजना के तहत बच्चों के लिए प्रमुख स्वास्थ्य लक्ष्य यह रखा गया कि शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) को कम करके 60 से नीचे तथा बाल मृत्यु दर (सीएमआर) को कम करके 10 प्रति हजार के स्तर पर लाया जाए। देश के 30 से अधिक राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने 2010 में ही 60 के आईएमआर के राष्ट्रीय लक्ष्य को हासिल कर लिया था। लेकिन आईएमआर के लिहाज से अंतर-राज्य भिन्नताएं खासी हैं। केरल में यह 13 है, तो मध्य प्रदेश में 62 है। राज्यों में केरल (13), महाराष्ट्र (28), पंजाब (34), तमिलनाडु (24), प. बंगाल (31) तथा कर्नाटक (38) उन राज्यों में शामिल हैं, जो 60 से कम आईएमआर हासिल कर चुके हैं। अब भी मध्य प्रदेश, ओडिशा और उत्तर प्रदेश ऐसे राज्य हैं, जहां 60 से ज्यादा आईएमआर है। शहरी क्षेत्रों में आईएमआर की गिरावट ग्रामीण क्षेत्रों की आईएमआर की तुलना में कम है। भारत ने 1994 में काहिरा में संपन्न इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑन पोपुलेशन एंड डवलपमेंट में हुई सहमति पर हस्ताक्षर किए हैं। इस बाबत कार्यक्रम में यौन रोगों तथा प्रजनन संबंधी संक्रमण के साथ ही चाइल्ड सर्वाइवल एंड सेफ मदरहुड प्रोग्राम को भी शामिल किया गया है।

भारत सरकार ने बच्चों पर राष्ट्रीय नीति को 2013 में नये सिरे से चाक-चौबंद किया। संवैधानिक प्रावधानों तथा बच्चों पर संयुक्त राष्ट्र कंवेंशन के प्रावधानों पर तवज्जो देते हुए इस नीति को पहले से ज्यादा व्यापक बनाने का प्रयास किया गया। सरकार ने बच्चों को न्याय दिलाने की गरज से बाल न्याय अधिनियम (जेजे एक्ट) को 1986 में संशोधित किया। इसे 2001 में फिर संशोधित किया गया। तत्पश्चात 2006 में बाल न्याय (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रन) एक्ट के रूप में सीआरसी (1989) के प्रावधानों के अनुरूप संशोधन किया गया।

शिक्षा

देश में 14-18 आयु वर्ग के 10 करोड़ बच्चे हैं। इनमें से करीब दो करोड़ 50 लाख बच्चे नौवीं और दसवीं कक्षा में पढ़ते हैं, जबकि एक करोड़ 30 लाख बच्चे ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में हैं। इससे पता चलता है कि तीन करोड़ 80 लाख बच्चे ऐसे हैं, जो माध्यमिक स्कूलों में शिक्षारत हैं। बीस करोड़ 20 लाख बच्चों में से 95 फीसद से ज्यादा बच्चे 6-14 वर्ष के आयु वर्ग में हैं, जिन्होंने स्कूलों में पंजीकरण (कक्षा एक से कक्षा 8 तक) करा रखा है। इससे पता चलता है कि शिक्षा के क्षेत्र में बेहद मांग है। लेकिन आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि इनमें से 25.09 फीसद बच्चे पांचवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते अधबीच स्कूल छोड़ देते हैं। करीब 42.68 फीसद कक्षा आठ तथा 56.71 फीसद कक्षा 10 तक पहुंचते स्कूल छोड़ बैठते हैं।

12वीं योजना के मसौदा में किशोरवय के लिए विशेष मानक तय किए जाने पर बल दिया गया है। किशोरवय 10 से 18 वर्ष किए जाने की बात कही गई है, ताकि विभिन्न योजनाओं के तहत भिन्न मार्गनिर्देशक नियमों में तालमेल बिठाया जा सके। इसमें आरटीई एक्ट के प्रभावी क्रियान्वयन की बात कही गई है। आरटीई को अधिक व्यापक बनाते हुए सीनियर सेकेंड्री स्तर तक के बच्चों को भी इसमें शामिल करने की सिफारिश की गई है, ताकि किशोरवय के बच्चों को भी इस कानून की जद में लाया जा सके। बारहवीं योजना के मसौदा में यह सिफारिश भी की गई है कि संकटग्रस्त क्षेत्रों में बाल अधिकारों के संरक्षण के लिए बाल बंधु पायलट कार्यक्रम की तर्ज पर सबला कार्यक्रम को मजबूत बनाया जाए। बाल बंधु योजना नागरिक संकट से ग्रस्त क्षेत्रों में किशोरवय बच्चों (14 से 18 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चे) के लिए हस्तक्षेप परियोजना है। इसका लक्ष्य है कि उन पांच राज्यों (एनसीपीसीआर, 2014) के 9 हिंसा-प्रभावित जिलों के संकट ग्रस्त इलाकों में बाल अधिकारों का संरक्षण किया जा सके।

किशोर श्रम

देश की कुल जनसंख्या में चालीस करोड़ से ज्यादा आबादी श्रमशक्ति में शुमार की जाती है। इसमें करीब तीन करोड़ बीस लाख श्रमिक किशोरवय (14 से 18 वर्ष आयु वर्ग) के श्रमिक हैं। मुख्य श्रमिकों के रूप में कार्यरत तीस करोड़ 20 लाख श्रमिकों में से दो करोड़ किशोरवय के श्रमिक हैं। नौ करोड़ सीमांत श्रमिकों में से करीब एक करोड़ 10 लाख किशोरवय के श्रमिक हैं। इस प्रकार 14 से 18 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों की कुल संख्या 10 करोड़ 20 लाख है, जिसमें से करीब तीन करोड़ 20 लाख बच्चे श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं।

एनएफएचएस-3 के मुताबिक, 33.4 फीसद लड़कियां और 50.4 फीसद लड़के (15-24 वर्ष के आयु वर्ग में) श्रम क्षेत्र से जुड़े हैं। इनमें से 60.9 फीसद ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादक कामधंधों में कार्यरत हैं, जबकि 88 फीसद कार्यरत किशोरवय के लड़के नकद मजदूरी अर्जित करते हैं। शहरी क्षेत्रों में 70.5 फीसद लड़के श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं। इसके विपरीत 22.2 फीसद लड़कियां ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हैं। जो 64 फीसद महिलाएं कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं, वे अपने परिवार के किसी सदस्य द्वारा ही नियोजित हैं। करीब 28 फीसद महिलाएं परिवार-इतर नियोक्ता द्वारा नियोजित की गई हैं। करीब 7 फीसद स्वनियोजित हैं। लड़कों के विपरीत, इनमें से दो-तिहाई महिलाएं नकद मजदूरी पर कार्य करती हैं। कार्यरत किशोरवय की लड़कियों में 11 फीसद को नकदी के बजाय किसी अन्य प्रकार से मजदूरी दी जाती है। करीब 26 फीसद ऐसी हैं, जिन्हें कोई भुगतान नहीं मिलता। वे बिना पगार की पारिवारिक मजदूर हैं। शहरी क्षेत्र की 39.5 फीसद लड़कियां-लड़कों की संख्या का करीब आधा हिस्सा-श्रमशक्ति में शुमार हैं। (एनसीपीसीआर-2014)

स्वास्थ्य एवं पोषण

जहां केवल 10 फीसद किशोर 15-19 वर्ष के आयु वर्ग में है, वहीं इस आयु वर्ग में किशोर लड़कियों (एजी) की मृत्यु दर 10-14 के आयु वर्ग में ज्यादा है, क्योंकि 15 लाख लड़कियों का विवाह 15 वर्ष की आयु पूरी करने से पूर्व ही कर दिया जाता है। और वे मां भी बन चुकी होती हैं। इतना ही नहीं 15-19 वर्ष आयु वर्ग की लड़कियों में आधी (56 फीसद) से ज्यादा और 30 फीसद से ज्यादा लड़कों को खून की कमी की समस्या का सामना करना पड़ता है। करीब आधी लड़कियां (47 फीसद) तथा 58 फीसद लड़के कम वजन की शिकायत का सामना कर रहे हैं, जिनका बॉडी मॉस इंडेक्स 18.5 केजी/एम2 से कम है। किशोरवय संबंधी आंकड़ों से पता चलता है कि 15-19 वर्ष आयु वर्ग की केवल 14 फीसद लड़कियों को संपूर्ण एएनसी प्राप्त होता है। इस कारण किशोरवय की विवाहित लड़कियों को प्रसव के दौरान जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। पंद्रह से 19 वर्ष के आयु वर्ग की विवाहित लड़कियों में 52 फीसद ने घर पर बच्चे को जन्म दिया और सभी प्रसूताओं को एकाएक गर्भपात करवाना पड़ा। मातृ मृत्यु के सभी मामलों में 41 फीसद मौतें 15-24 वर्ष के आयु वर्ग में हुईं। इस आयु वर्ग में एनएमआर बेहद ऊंचा 54/1000 है। ग्रामीण इलाकों में एनएमआर और भी ऊंचा 60/1000 दर्ज किया गया है।

सरकार ने यूएन सीआरसी-1989 के तहत बाल अधिकारों के प्रावधानों को महसूस किया है। इस बाबत कार्यक्रमों में सतत संशोधन करती रही है। बालिकाओं के हितों के संरक्षण की गरज से केवल उन्हीं के लिए जो योजनाएं आरंभ की गई हैं, वे इस प्रकार हैं : बालिका समृद्धि योजना (बीएसवाई); किशोरी शक्ति योजना (केएसवाई); किशोरवय की लड़कियों के लिए पोषण कार्यक्रम (एनपीएजी); बुनियादी शिक्षा के साधारीकरण कार्यक्रम के तहत 3-6 वर्ष के आयु वर्ग की लड़कियों के लिए बाल शिक्षा योजना; केयर एंड प्रोटेक्शन की जरूरत के मद्देनजर कामकाजी बच्चों के कल्याण की योजना; बच्चों की बेहतर देखभाल की गरज से जुवैनाइल जस्टिस एडमिनरेशन; पर्यटन स्थलों पर यौन शोषण से बचाने की गरज से महिलाओं और बच्चों की तस्करी को रोकने के मद्देनजर पायलट परियोजना तथा मिड-डे मील योजना। ■

■ प्रो. कमल कांत मिश्र
डिपार्टमेंट ऑफ एंथ्रोपोलॉजी,
हैदराबाद सेंट्रल यूनिवर्सिटी

भाषिक वैविध्य

2001 में की गई जनगणना के मुताबिक, हिंदी भारत में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। करीब 41पतिशत भारतवासी हिंदी भाषी हैं। यह भारत की आधिकारिक भाषा है, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसके बाद भाषा-भाषियों की संख्या के मुताबिक चार प्रमुख भाषाएं इस प्रकार हैं : बंगाली (8.1प्रतिशत), तेलुगू (7.2 प्रतिशत), मराठी (7 प्रतिशत) व तमिल (5.9 प्रतिशत)

विविधता में एकता' की धरा है भारत। यह बात डंके की चोट कही जाती है। अनेकों लोग कहते मिल जाएंगे कि यहां हर दस मील पर भाषा और संस्कृति बदल जाती है। यह सोच कितनी सच है? भारत की भाषायी विविधता और संस्कृति में योगदान करने वाले कारकों में संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण कारक अपने देश का घटनापूर्ण इतिहास और तमाम देशों से यहां पहुंचने वाले लोगों के साथ तालमेल बिठा लेने का इसका रिकॉर्ड रहा है। बीते समय में चाहे किसी भी मंशा से लोग भारत पहुंचे हों, लेकिन उन्होंने इस देश को अपना घर बना लिया। उनमें से कुछ ने यहां बसने के उपरांत यहां की मूल भाषा अपना ली तो अन्य ऐसे भी रहे जिन्होंने जिस क्षेत्र में आबाद हुए, वहां की प्रमुख भाषा को अंगीकार कर लिया। या फिर उन्होंने दो या दो से ज्यादा स्थानीय भाषाओं के मेल से बनी कोई नई भाषा बोलना शुरू कर दिया।

ब्रिटिश भारत में देश का सबसे पहला भाषायी सर्वेक्षण किया गया। आयरलैंड के भाषाविद् अब्राहम गिर्यसन के नेतृत्व में किया गया यह सर्वेक्षण 1903 और 1928 के बीच 20 खंडों में 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के नाम से प्रकाशित किया गया। वर्ष 1894 और 1928 के कालखंड में किया गया यह एक बड़ा प्रयास था। गिर्यसन ने गिनती की थी कि भारतीय उस समय 364 भाषाएं और बोलियां बोलते थे। हाल में बड़ोदा स्थित भाषा रिसर्च एंड पब्लिकेशन सेंटर ने पिपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (पीएलएसआई) नाम से एक सर्वे किया है। इससे पता चला कि भारत में 860 भाषाएं बोली जाती हैं। कितनी अनूठी है भारत की भाषायी विविधता! इन 860 भाषाओं में केवल 22 भाषाएं ही आधिकारिक रूप से मान्यता प्राप्त हैं। वर्ष 1971 में की गई जनगणना ने आकलन किया था कि भारत में 108 भाषाएं ऐसे भाषायी सूमहों द्वारा बोली जाती हैं, जिनकी संख्या दस हजार या ज्यादा है। लेकिन चिंता की बात यह है कि आजादी के बाद कम से कम 300 भाषाएं लुप्त हो गई हैं। यह जानकारी पीएलएसआई के प्रो. गणेश डेवी ने दी है। चूंकि भाषा किसी संस्कृति का आईना होती है, इसलिए किसी भाषा की विलुप्ति उस संस्कृति की मौत की घंटी ही तो है। दूसरे शब्दों में भाषायी संहार एक प्रकार का सांस्कृतिक संहार है।

चार प्रमुख भाषायी परिवार

भारतीय भाषाओं को चार प्रमुख भाषायी परिवारों में विभक्त किया जा सकता है : इंडो-आर्यन, द्रविड़ियन, ऑस्ट्रो-एशियाटिक तथा तिब्बतो-बर्मन। भारत में इंडो-आर्यन भाषाएं बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है। ये लोग पश्चिम में गुजरात और राजस्थान से लेकर पूर्व में असम तक आबाद हैं। इस प्रकार समूचे मध्य भारत और हिमालयी क्षेत्र में ये भाषा-भाषी फैले हैं। भारत की लगभग 74 फीसद जनसंख्या इंडो-आर्यन भाषाएं बोलती हैं। इनके बाद द्रविड़ियन का नम्बर आता है। ये भाषा-भाषी भारत के चार दक्षिणी राज्यों-अविभिाजित आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल-तक सीमित हैं, जहां करीब 24 फीसद लोग इन भाषाओं को बोलने वाले हैं। कोंध (कुइ), कोया, गोंडी, कोलामी वगैरह जनजातीय भाषाएं द्रविड़ियन परिवार की भाषाएं हैं। ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा-भाषी मध्य भारत की जनजातीय पट्टी में केंद्रित हैं। भारत की जनसंख्या में इन भाषाओं को बोलने वाले 1 फीसद से कुछ ज्यादा हैं। मुंडा, संथाली, खरिया, हो, ओरांव, सओरा वगैरह अन्य जनजातीय भाषाएं इस परिवार के तहत वर्गीकृत की गई हैं। भारत की जनसंख्या का 1फीसद से कुछ कम लोग तिब्बतो-बर्मन भाषाएं बोलते हैं। ये ज्यादातर पूर्वोत्तर भारत में आबाद हैं, और गारो, अदि, डाफला और नगा, मणिपुरी, त्रिपुरी, लद्दाखी वगैरह जैसे कुछ हिस्से ये भाषाएं बोलते हैं। किन्नौरी और तिब्बतन भाषा-भाषी भी इस भाषा परिवार से जुड़े हैं। यह विपुल विविधता भारत को भाषाओं के लिहाज से विविध रंगी देश बना देती है।

2001 में की गई जनगणना के मुताबिक, हिंदी भारत में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। करीब 41 फीसद भारतवासी हिंदी भाषी हैं। यह भारत की आधिकारिक भाषा है, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसके बाद भाषा-भाषियों की संख्या के मुताबिक चार प्रमुख भाषाएं इस प्रकार हैं : बंगाली (8.1फीसद), तेलुगू (7.2 फीसद), मराठी (7 फीसद) तथा तमिल (5.9 फीसद)। लेकिन अधिकांश भारतीय द्विभाषी या बहुभाषी हैं। वे अपनी मातृ भाषा के अलावा अन्य भाषाएं बोलने में भी सक्षम हैं। सरकार अनेक भाषाएं बोल सकने की भारतीयों की क्षमता के मद्देनजर शिक्षा क्षेत्र में त्रिभाषा फार्मूला अपनाती है। सेकेंड्री स्तर पर बच्चों को हिंदी, इंग्लिश और क्षेत्रीय भाषाओं में से कोई एक भाषा पढ़ाई जाती है। इस कारण सैकड़ों मातृ भाषाओं को नुकसान होता है। इसी प्रकार भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची उन भाषाओं को ही मान्यता देती है, जिसके बोलने वाले सियासी वर्चस्व रखते हैं। यह भारत की बहुभाषा प्रकृति पर कुठाराघात है।

भारत के भाषायी पटल पर सर्वाधिक चिंता की बात है कि अनेक भाषाएं चलन से बाहर हुई हैं, या होने के कगार पर हैं। यह सीधे-सीधे प्रमुख भाषा(ओं) का एकाधिकारवादी रुझान है। भारतीय भाषाओं की विविधता 'आधिकारिक भाषा' या 'राज भाषा' या कमतर भाषा के दबदबे की शिकार हो जाने के गंभीर खतरे के साये में है। यह 'भाषायी अधिनिवेशवाद' का स्पष्ट उदाहरण है। इसके नतीजे घातक होंगे। यह रुझान न केवल भाषायी विविधता पर भारी पड़ेगा, बल्कि एकरूपी संस्कृति और सांस्कृतिक अधिनायकवाद को बढ़ावा देकर सांस्कृतिक विविधता को नष्ट कर देगा। ■

जाति की आर्थिकी

■ प्रशांत खत्री
इलाहाबाद विवि.

भारतीय समाज का मूल गुण है विविधता। भारत में अनेक प्रकार की जातियों, धर्मों और समुदायों का वास हजारों वर्षों से रहा है परन्तु सबसे बड़ा दुर्भाग्य भी रहा है कि यही विविधताएं सामुदायिक, धार्मिक और जातीय विभाजन का मूल आधार बनकर भी उभरी हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में पीपुल ऑफ इंडिया महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बनके उभरता है, जो हमें इन विविधताओं को समेकित दृष्टि से देखने का अवसर प्रदान करता है। इसी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में भारतीय कारीगरों और दस्तकारों को समझने का प्रयास पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट में किया गया है।

पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट के अंतर्गत प्रारंभिक तौर पर 1018 समुदायों के नामों का विश्लेषण करने से पता चला कि उनका गहरा संबंध पारंपरिक व्यवसाय से है जैसे अगरिया, आतिशबाज, बहुरूपी, वैद्यकार, बुना, बंस्फोड़, बजंदर, चुड़ीहार, लोहार, सुनार, मालाकार इत्यादि। अध्ययन किए गए समुदायों में केवल 3 प्रतिशत ही ऐसे पाए गए जिनके नाम धर्म पर आधारित थे। लगभग 48 प्रतिशत सामुदायिक नाम पारंपरिक व्यवसायों पर आधारित पाए गए। यह इस बात की भी पुष्टि करता है कि जाति व्यवस्था मूलतः आर्थिक है। धर्म के आधार पर कलात्मक पारंपरिक व्यवसायों को नहीं बांटा जा सकता। प्रोजेक्ट में विभिन्न समुदायों की कला एवं शिल्प कौशल का अध्ययन किया गया। कलाओं में सबसे प्रचिलित कला फर्श चित्रकारी की थी। उसके बाद दीवार चित्रकारी, आरेख, नक्काशी, शरीर टैटू (गोदना) आदि कलाएं भी काफी लोकप्रिय रहीं। शिल्प कला के संदर्भ में सबसे प्रचिलित टोकरी बनाने की कला रही। बुनाई, कढ़ाई, कुम्हारी सबसे लोकप्रिय रहीं।

यह विडम्बना रही कि कालांतर में पारंपरिक सामुदायिक व्यवसायों में बदलाव आए जिसके फलस्वरूप कई समुदायों ने अपने कलात्मक व्यवसाय को छोड़ अन्य व्यवसायों को अपना लिया। शिल्पकारों/दस्तकारों में सबसे अधिक बुनकरों ने अपने पारंपरिक व्यवसाय को या तो पूरी तरह छोड़ दिया या फिर अन्य व्यवसायों के साथ बुनकरी को अतिरिक्त व्यवसाय के रूप में जारी रखा। जम्मू-कश्मीर के बंद समुदाय ने-जो टोकरी बनाने के व्यवसाय से सम्बंधित था- टोकरी बनाना छोड़ कृषि को अपना प्राथमिक व्यवसाय बना लिया। पंजाब का धनक समुदाय (बुनकर), बिहार का बढ़ई, उत्तर प्रदेश का दर्जी और ऐसे कई अन्य समुदाय अपने पारंपरिक व्यवसाय को छोड़ने पर इसलिए मजबूर हो गए क्योंकि या तो उन पर अधिकारियों द्वारा अंकुश लगा दिया गया, या वे कच्चे माल की कमी से जूझते रहे और या फिर मशीनी कारखानों से बड़ी संख्या में निर्मित वस्तुओं के आगे वे नहीं टिक पाए। 1960 के दशक में भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण द्वारा समुदायों के पारंपरिक व्यवसाय में हुए परिवर्तन पर शोध किया गया जिसको कुमार सुरेश सिंह ने पीपुल ऑफ इंडिया पुस्तक में उद्धृत किया है। शोध से पता चलता है कि पारंपरिक व्यवसाय में सर्वाधिक बदलाव दस्तकार/शिल्पकार समुदायों में ही आया।

यह बदलाव एक ऐसे ट्रेंड की तरफ इशारा करते हैं, जिसमें विविधता का स्थान कम होता दिखाई देता है। एकरूपता और आधिपत्य का विस्तार परिलिक्षित होता है। विविधता जीवन का मुख्य गुण है। समाज के संदर्भ में इस विविधता को मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कौम के स्तर पर देखने का प्रयास किया था। मौलाना के अनुसार हिन्दू और मुसलमान धार्मिक स्तर पर एक दूसरे के प्रतिवादी प्रतीत होते हैं परन्तु कौम के स्तर पर वे एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। कौम के स्तर पर भारत में सामुदायिक कोलाज देखने को मिलता है जिसमें विभिन्न समुदाय आपस में प्रकार्यात्मक दृष्टि से जुड़े पाए जाते हैं। दस्तकार/शिल्पकार भी उसी संरचनात्मक कोलाज का एक अभिन्न अंग हैं। वास्तव में कौम ही भारतीय समाज और इतिहास को प्राकृतिक स्तर पर विभक्त करती है। भारत कई प्रकार के क्षेत्रों में विभक्त है, जिनकी अपनी पारिस्थितकी है, भाषा है, और संस्कृति है। प्रत्येक क्षेत्र के अपने जातिगत समूह और समुदाय हैं, जिनमें कृषक, आदिवासी, शिल्पकार एवं दस्तकार, मछुआरे इत्यादि हैं। ■